अथ पञ्चदशोऽध्यायः

पन्धरमाँ परसोतमयोग अद्धयाय

श्रीभगवानुवाच

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं वेद स वेदवित्।। १

स्रीभगुवान् बोल्ले

(ब्रिक्स जिसी सै या दुनियाँ)

ऊप्पर जड़ सै नीच्चै डाळी, 'अस्वत्थ' कहैं इस अविकारी नै।
समै न जिस का किमे बिगाड़ै, सूक्षम, कारण, सदा रहणियाँ।।
ब्रह्म तत्त्व इस पीप्पळ की जड़, त्रिगुण-विकासी सब सैं डाळी।
'अ-श्व-त्थ' न यो काल्ह टिकै गा, छादन करदे, ढक कैं रखदे।।
डाळी बरगे बिस्ताराँ नै, पत्ते छाए इस कै ऊप्पर।
छन्दबिधा तैं बँधे मन्त्र सैं, करम बिधा तैं रच्छा करदे।।
जो नर इस संसार वृक्स नै, समझै सै, वो धर्म'र अधरम।
इन के कारज करम फळाँ का, ग्यान करान्दे बेद्दाँ नै सै।
समझै अर्जन, वो सै ग्यान्नी॥ १

अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा, गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः।
अधश्च मूलान्यनुसंततानि, कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके।। २

(रूपक की प्रसङ्गसङ्गती)

नीच्चै जङ्गम माणस पसु अर, पञ्छी जन्तू रेङ्गणिये बी।
उन तैं नीच्चै थावर तरु त्रिण, पर्वत नदिया ओर समन्दर।।
ऊप्पर पित्तर सुर ब्रह्मा तक, फैल्ली इस की डाळी मोट्टी।
सत रज तम इन तीन गुणाँ तैं, जलमी बढदी बिसै कोंपलें।।
नीच्चै फैल्ली हवा-डाढ-सी, राग दुवेस'र मोह-सोक-सी।
करम-फळाँ तैं उत्पन होंदी, अधरम धरम मैं गेरैं नर नै।
कर्माँ तैं न्यूँ जुड़ कैं रहँदी, मनुख रहैं जित उस धरती पै॥ २

न रूपमस्येह तथोपलभ्यते, नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा।
रूप न इस का इस दुनियाँ मैँ, इस तह्रियाँ रहँदे सै मिलदा।
नहीँ अन्त अर नाँ ए आदी, नाँ ए टिकणा बीच समै मैँ।।

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा।। ३
(संसार वृक्स नै काट्टण के ओर तरीक्के ब्रह्मप्राप्ति के)
खूब जमी, फैल्ली जड़ आळै, इस पीप्पळ नै अभ्यास साण पै।
घिस कैँ घिस कैँ खूब पनाए, बैराग कुहाड़ै तैँ काट्टै।। ३

ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं, यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूपः।
तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये, यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी।। ४
उस कै पाच्छै ठाँ वो खोज्जै, जित जा कैँ नाँ आवैँ वापस।
उस्सै सब कै आदि पुरुस की, सरण गहूँ सूँ, जित तैँ स्रिस्टी।
चाल्ली आ ह्वी कती पुराणी, ठाण चित्त मैँ उस नै खोज्जै।। ४

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा, अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्, गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्।।५
[१]खुद नै ए जो किमे मानणा, [२]सही गलत मैँ फर्क न करणा।
जिन कै मन तैँ लिकड़े ये सैँ, [३]जीत्या राग दोस सै जिन नै।।
[४]आत्मग्यान मैँ लाग्गे रहँदे, तत्त्व समझ कैँ, राग छोड कैँ।
[५]बिसैँ भोग की चाह न रखदे, [६]गर्मी-सर्दी, त्रिप्ति-अत्रिप्ती।।
अनुकूल-बिरोधी सुख-दुख से, आपस मेँ लड़दे भावाँ तैँ सैँ।
छूट्टे माणस मोह-रहित हो, पावैँ ठाँ अविकारी वो जो।। ५

न तद्भासयते सूर्यो, न शशाङ्को न पावकः।
यद् गत्वा न निवर्तन्ते, तद्धाम परमं मम।। ६
(परम धाम की कही खासियत)
नाँ उस नै चिमकावै सूरज, नाँ चन्दा नाँ अग्गी उस नै।
जिस नै जा नाँ वाप्पस आवैँ, वो ठाँ सब तैँ ऊँच्चा मेरा॥ ६

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति।। ७
(ईस्वर का ए अंस जीव सै)

मेरा ए अंस, भाग-सा सै, प्राणाधारद्याँ की दुनियाँ मैँ।
जीव रूप तैँ सदा रहणियाँ, मन सै छठमाँ जिन मैँ, उन सब।।
आप्णी प्रक्रिती सुभाव मैँ स्थित, आत्मदेव की सेवा करदी।
ग्यान करा कैँ रूप'र रस का, गन्ध सबद अर स्पर्स बिसै का।।
संकल्प कल्पना बिन बी इन कै, मनसाराम करै यो, इन नै।
खींच्चै, ले ज्या मरणै पाच्छै, ओर देह मैँ सूक्ष्म रूप मैँ॥ ७

शरीरं यदवाप्नोति, यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति, वायुर्गन्धानिवाशयात्।। ८
(इन्द्री सँग सै देह बदलदा)
काया मैँ जिद आवै अर जो, लिकड़ै बाहर, इस तैँ स्वामी।
ले कै इन नै चाल्लै सै वो, हवा महक नै ज्यूँ फूल्लाँ तैँ॥ ८

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च, रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं, विषयानुपसेवते।। ९
(उनका मालिक बण बिसय भोगदा)
सुख दे जिस तैँ, देक्खैँ जिस तैँ, चाक्खैँ खाट्टा मीट्ठा जिस तैँ।
जाणै जिस तैँ नरम गरम नै, सूँघैँ जिस तैँ महक बाँस नै।
स्वामी बण कैँ मनीराम का, बिसयाँ का यो भोग करै सै॥ ९

उत्क्रामन्तं स्थितं वापि, भुञ्जानं वा गुणान्वितम्।
विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः।। १०
(मोह्या नाँ देक्खै आत्मा नै)
ऊप्पर जान्दै काया तैँ या, रहँदै बी उत बिसै भोगदै।
तीन गुणाँ तैँ युक्त जीव नै, अग्ग्यान्नी नाँ देक्खैँ, देक्खैँ।
ग्यान आँख नै धारणिये जन॥ १०

यतन्तो योगिनश्चैनं, पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो, नैनं पश्यन्त्यचेतसः।। ११
(योगी देक्खै आपणै मैँ ए)
सुण कैँ गुरु तैँ, ग्यान्नी जन तैँ, चिन्तन मनन'र ध्यान करणिये।

करदे भोत तह्याँ कोसिस, योगी मन नै बस मैँ करदे।।
रोक चित्त की चञ्चलता नै, इस नै देक्खैँ आप्णै मैँ स्थित।
जतन खूब पर करदे बी जो, आप्णे स्वामी बण नाँ पावैँ।
भाज्यै-भाज्यै सै चित आळे, नाँ वैँ इस नै देख सकैँ सैँ॥ ११

यदादित्यगतं तेजो, जगद्भासयतेऽखिलम्।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ, तत्तेजो विद्धि मामकम्।।१२

(आतमतेज जगत नै धारै)

जो सूरज मैँ तेज व्याप्त वो, सारी दुनियाँ नै चिमकावै।
जो चन्दा मैँ, जो अग्नी मैँ, वो तैँ तेज समझ ले मेरा॥ १२

गामाविश्य च भूतानि, धारयाम्यहमोजसा।
पुष्णामि चौषधीः सर्वाः, सोमो भूत्वा रसात्मकः।।१३

धरती मैँ बड़ थावर जङ्गम, सब नै धारूँ सूँ मैँ बळ तैँ।
पोस्सूँ सूँ मैँ फसलाँ सारी, चन्दा बण कैँ सब रसआप्नै॥ १३

अहं वैश्वानरो भूत्वा, प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः, पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।। १४

मैँ काया मैँ गर्मी बण कैँ, जीन्द्याँ की काया मैँ स्थित हो।
नाक्काँ तैँ हो भीत्तर-बाहर, जान्दी-आन्दी साँस्साँ तैँ मिळ।।
अन्न पचाऊँ च्यार तह्याँ का, [१]तोड़ दाँत तैँ, चबा जाड़ तैँ।
खाया जा जो 'भक्स्य' अन्न वो, [२]सिरफ जीभ तैँ हला-चला कैँ।।
निगळैँ जिस नै, 'भोज्य' अन्न वो, [३]जिव्ह्या पर धर रस लैँ अर फिर।
गळ तैँ नीच्चै सटकैँ जिस नै, 'लेह्य' चाटदे चटखारे लैँ।
[४]रस लैँ जिस का चूस-चूस कैँ, 'चोस्स्य' कुहावैँ सै वो चोत्था॥ १४

सर्वस्य चाहं हृदि संनिविष्टो, मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो, वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्।। १५

सब कै अर मैँ ह्रिदैभवन मैँ, बुद्धि करण मैँ चिद् आभासित।
हो कैँ बैट्ठ्या जीवरूप मैँ, बण कैँ मैँ सूँ अन्तर्यामी।।
मत्तैँ होवै इसै जलम मैँ, अनुभव पाए, मति मैँ धारे।
विसयाँ के सँस्काराँ का सै, योगी के, पर, पुरब जलम के।।

स्मरण रूप मैँ फिर तैँ फुरणा, अनुभव कै सँस्काराँ का सै।
मत्तै होवै ग्यान मनुख नै, स्थूल'र सूक्षम बिसयाँ का सै।।
स्म्रिति अर अनुभव दोन्नूँ का ए, ओर भूलणा मत्तैँ होवै।
अर बेद्दाँ सार्‌याँ तैँ मैँ ए, जाण्या जाँ, बेदान्त ग्यान का।।
तीन गुणाँ कै ग्यान'र अनुभव, खतम होण कै पाच्छै रहँदे।
अगम अरूप न भासा जिस नै, कह या पावै कद्दे कित बी।।
इसै ततव नै समझण का बी, मैँ ए कर्ता ओर जणाऊँ।
तीन काळ अर तीन लोक मैँ, ग्यान्नी, अग्ग्यानी अर जड़ जो।।
तीन तह्याँ के, तीन गुणाँ तैँ, प्रकास, क्रिया अर अन्धेरै तैँ।
ब्याप्यै सारै जग का जो सैँ, ग्यान करावैँ उन बेद्दाँ का।
उन मैँ वर्णित सब ग्यान्नाँ का, जाणनियाँ बी मैँ सूँ अर्जन॥ १५

द्वाविमौ पुरुषौ लोके, क्षरश्चाक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि, कूटस्थोऽक्षर उच्यते।। १६

(ततव जगत् मैँ क्सर अर अक्सर)

दो ये पुरुस जगत मैँ हों सैँ, एक भरै सै ओर भर्‌या जा।
उपादान बण कारण सब का, भरदा सारै कार्य जगत् नै।।
चेतन आत्मा की छबि तैँ, भासित हो न्यूँ भरदा उस तैँ।
ओर दूसरा पुरुस भरै सै, चेतन आत्मा जग नै छबि तैँ।।
पहला इन मैँ 'क्सर' सै, जो सै, परम विकारी, बदलै छिण-छिण।
ओर दूसरा 'अक्सर' अव्यय, अविनासी यो नाँ ए बदलै।।
'क्सर' जो बदलै घोर बिकारी, सारे सबबिध समै देस मैँ।
'भूत' पदारथ होए जो सैँ, होंगे बी जो इस दुनियाँ मैँ।।
'कूट' डळा-सा, ग्यान क्रिया तैँ, सून्ना-सा जो पड़्या गुफा मैँ।
पुरुस दूसरा यो अबिनासी, 'अक्षर' पुरुस कुहावै इत सै॥ १६

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः, परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य, बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।। १७

(क्सर अक्सर तैँ ऊप्पर परमात्मा)

सब तैँ ऊप्पर पुरुस परन्तू, ओर तीसरा 'परमात्मा' यो।
खूब बताया रिसियाँ नै सै, जो सै तीन लोक मैँ बड़ क्यैँ ।।
चैतन्य सक्ति तैँ उत घुस कैँ, पाळ-पोस कैँ बडा करै सै।
अविकारी, अविनासी सासक॥ १७

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च, प्रथितः पुरुषोत्तमः।। १८

क्यूँकी जगद ब्रिक्स जो नस्स्वर, पाच्छै छोड्डया सै वो मन्नै।
उस तैँ अर संसार ब्रिक्स कै, बीज बण्यै अक्सर तैँ बी मैँ।।
ऊँच्चा दुर्गम परमेसर सूँ, इस कारण सूँ लोक बेद मैँ।
जाण्या जाँ 'परसोतम' कह कैँ॥ १८

यो मामेवमसंमूढो, जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद् भजति मां, सर्वभावेन भारत।। १९

जो मन्नै न्यूँ नाँ अविवेकी, ना जो भरमित सै वो माणस।
जाणै सै परसोतम कर कैँ, सब कुछ जाणनियाँ वो भगती।।
करदा मेरी सभी तह्याँ तैँ, सब कुछ मैँ सूँ, मत्तैँ न्यारा।
नाँ सै कुछ बी इस दुनियाँ मैँ, इसै भाव तैँ भारत, अर्जन।। १९

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमान् स्यात्, कृतकृत्यश्च भारत।। २०।।
ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः।। १५।।

(उपसंहार)

न्यूँ सै सब तैँ गुपत सास्त्र यो, बोल्ल्या मन्नै पाप रहित हे अर्जन।
इस नै समझै, ग्यान्नी होवै, कर्‌या सबै कुछ उस नै करणा।
जो कुछ बी था इस जीवण मैँ, भरतबँस मैँ जाए अर्जन॥ २०

स्रीमती सीत्तादेब्बी अर स्रीस्रीनिवास सास्तरी कै बेट्टै सिवनारायण
सास्तरी कै हरियाणी भास्सा कै गीत्तायन काब्ब्यभास्स्य मैँ
पन्धरमाँ अद्ध्याय पूरा होया।। १५।।

पूर्वसलोकयोग ५५० + २० = ५७०